International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 06, No. 01(I), January - March, 2024, pp. 71-79

शैव दर्शन और वीर शैव दर्शन में शिव और शक्ति का स्वरूप

मंजू मीना*

सार

भारत वर्ष में अनेक विचारधाराओं का विकास हुआ है। इन विचारधाराओं पर आधारित अनेक धर्म प्रचलित हुये हैं। काल एवं परिस्थिति के अनुसार समय–समय पर यहाँ भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों एवं दर्शनों का आविर्भाव हुआ है। भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों एवं दर्शनों का आविर्भाव हआ है। इन्हीं में से एक शैव सम्प्रदाय है जो भारतीय दर्शन परम्परा में विशिष्ट स्थान रखता है। उत्तर भारत में यह सम्प्रदाय शैव मत और दक्षिण भारत में यह सम्प्रदाय वीर शैव दर्शन के नाम से जाना जाता है। शिव से संबंधित धर्म ही शैव धर्म कहलाता है तथा उसके अनुयायियों को शैव कहा जाता है। शैव धर्म अत्यंत प्राचीन धर्म है। शैव धर्म के विकास के फलस्वरूप उनके अनुयायियों में विभिन्न प्रकार से शिव की आराधना का प्रचलन हुआ है, जिससे इसके विभिन्न सम्प्रदाय बने। शैवागम में शैव मत के चार संप्रदाय पाशुपत, कापालिक, शैव और कालामुख का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत में वीरशैव दर्शन जिसे लिंगायत भी कहते है का प्रादुर्भाव हुआ। वीर शैव दर्शन में पंचाचार अष्टावतरण प्रमुख है। अष्टावरण के दो उद्देश्य है – किसी को भी तत्व का वास्तविक ज्ञान न होने देना और दूसरा सभी विनाशकारी शक्तियों का विच्छेद करना। अतः अन्य दर्शन में आवरण को स्वरूप के आच्छादन के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं जबकि वीर शैव दर्शन में आवरण रक्षा कवच के रूप में प्रयुक्त हुआ है। कश्मीर शैव दर्शन अद्वैतवादी और वीर शैव दर्शन द्वैताद्वैतवादी माना गया है। इस शोध के माध्यम से उत्तर (कश्मीर) और दक्षिण भारत (वीर शैव दर्शन) में शिव और शक्ति के स्वरूप को समझाना हैं।

शब्दकोशः *कश्मीर शैव दर्शन, अद्वैतवाद, वीर शैव दर्शन, अविनाभाव संबंध, प्रत्यभिज्ञा।*

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान रहा हैं। हिंदू धर्म में हम वैदिक, अवैदिक तथा जनसाधारण के धार्मिक विश्वासों का समन्वय देखते हैं। प्राचीन काल में धार्मिक विश्वासों का समन्वय देखते हैं। प्राचीन काल में अनेक देवी–देवताओं का उल्लेख मिलता है। जिनसे संबंधित विभिन्न सम्प्रदायों का हिंदू धर्म में विकास हुआ। इनमें वैष्णव, शाक्त, शैव आदि धर्म प्रमुख हैं। इन सभी धर्मों को उपासना पद्धतियां अलग–अलग हैं। जिसमें शैव धर्म अपनी विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं। क्योंकि शैव दर्शन की उत्पत्ति स्वयं भगवान शिव के द्वारा मानी गई है। आगे चलकर शैव दर्शन विभिन्न मत या सम्प्रदायों में विभक्त होता है जिसे द्वैतवादी, अद्वैतवादी और द्वैताद्वैतवादी सम्प्रदायों में विभक्त किया जाता हैं। चूंकि हमारे विवेचन का विषय अद्वैतवादी और द्वैताद्वैतवादी दृष्टिकोण हैं। अद्वैतवादी कश्मीर शैव दर्शन को तथा द्वैताद्वैतवादी वीर शैव दर्शन को माना गया हैं। कश्मीर शैव दर्शन में शिव और शक्ति के मध्य जो अद्वैतवाद संबंध बताया गया हैं, वह अद्वैत वेदांत से भिन्नता रखता हैं। कश्मीर शैव दर्शन का परमशिव स्वातंत्र्य शक्ति से स्वयं को प्रकाशित करता है। उनका यह स्वप्रकाश

* शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

न तो परिणामवाद और न ही विवर्तवाद। अद्वैत वेदांत का परमतत्व, जिसे ब्रह्म कहा गया है वह शक्ति या माया के द्वारा आच्छादित कर दिया जाता है, जबकि शैव दर्शन की शक्ति ही शिव को सृष्टि का सर्जन करने के लिए प्रेरित करती हैं। इन दोनों दर्शन में मूलभूत अंतर यहीं है। इसके अतिरिक्त वीरशैव दर्शन को शक्तिविशिष्टाद्वैत दर्शन की संज्ञा दी गई हैं। इसमें जीव और शिव के मध्य भेदाभेद संबंध की व्याख्या की गई है। शिव और शक्ति के मध्य नित्य संबंध को स्पष्ट किया गया है कि शक्ति ही भक्ति के रूप में जीवात्मा में प्रवेश करके उसके मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करती हैं।

कश्मीर शैव

कश्मीर को शैव सम्प्रदाय का गढ़ माना गया हैं। वसुगुप्त ने 9वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कश्मीरी शैव सम्प्रदाय का गठन किया। वसुगुप्त के दो शिष्य थे कल्लट और सोमानंद। इन दोनों ने ही शैव दर्शन की नई नींव रखी। किन्तु सोमानंद की शिवदृष्टि ही कश्मीर शैव दर्शन का सर्वप्रथम दार्शनिक ग्रंथ हैं। इन्होंने शिव दृष्टि में शैव दर्शन के मूल सिद्धांतों का, तत्वों की सृष्टि का तथा शैव दर्शन के उस विचित्र अद्वैत सिद्धांत का स्पष्ट वर्णन किया है। इसी क्रम में आचार्य सोमानंद के शिष्य आचार्य उत्पलदेव ने ईश्वर–प्रत्यभिज्ञा और सिद्धयत्री का निर्माण करके शैव दर्शन की प्रसिद्धि को और अधिक बल दिया।

रचनाकार तथा सिद्धांत प्रतिपादन की शैली के विकास के विचार से कश्मीर शैव दर्शन के आधारभूत उपलब्ध साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है – आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र। आगम के सृष्टा और वक्ता स्वयं भगवान शिव को माना गया है। शैवागमों में यह उल्लेख मिलता है कि भगवान शिव ने लोक कल्याण के लिए इन आगमों का ज्ञान ऋषियों को प्रदान किया, जिससे आगे चलकर गुरू–शिष्य परम्परा का प्रचलन हुआ। इसी गुरू–शिष्य परम्परा से आगमों का ज्ञान जगत में प्रचलित होता चला गया।

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र कश्मीर शैवदर्शन का दर्शन शास्त्र हैं। क्योंकि प्रत्यभिज्ञा शास्त्र ने ही सर्वप्रथम कश्मीर के अद्वैत शैव मत का दार्शनिक रूप में विवेचन प्रस्तुत किया था। दर्शनशास्त्र से तात्पर्य यहां उसमें पूर्ववर्ती दर्शनों के सिद्धांतों की आलोचना तथा खण्डन करके शास्त्रों में जो अनुमोदित तर्क है उनके आधार पर स्वपक्ष की स्थापना करना है। कश्मीर शैव दर्शन का आध्यात्मिक दृष्टिकोण अद्वैतवादी हैं। अद्वैतवाद से तात्पर्य उस विचारधारा से है जो कि मात्र केवल एक ही तत्व की सत्ता को स्वीकार करें, जिनके लिए केवल कोई एक ही तत्व है जिससे इस संपूर्ण सृष्टि के विकास और विनाश को गति प्राप्त होती है। इसी प्रकार कश्मीर शैव दर्शन में भी, जैसा कि इसके नाम से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि केवल एक ही तत्व (शिव) को पूर्ण सत्य, परमब्रह्म माना गया हैं। वह पूर्ण चिद्रूप है। शिव को 'चिति' कहा गया हैं। चिति ही परमशिव हैं। इस चिति को आत्मा के समान माना गया हैं। चिति को चेतना का स्वरूप कहा गया हैं। शिव से बढ़कर कुछ भी नहीं है। इसलिए इसे परासंवित्, परमशिव, अनुत्तर आदि नामों से अभिहित किया गया है।[1]

शिव से लेकर जितने भी अंतपर्यन्त तत्व है, सभी तत्व इस चेतन स्वभाव आत्मा में है। शैव दर्शन में आत्मा को प्रकाश–विमर्श रूप कहा गया हैं। ये प्रकाश और विमर्श एक–दूसरे से कभी भी भिन्न नहीं माने जा सकते। प्रकाश के बिना विमर्श नहीं और विमर्श के बिना प्रकाश का कोई अस्तित्व नहीं। अतः कहा जा सकता हैं। शैव दर्शन में आत्मा को प्रकाश–विमर्श रूप कहा गया हैं। ये प्रकाश और विमर्श एक–दूसरे से कभी भी भिन्न नहीं माने जा सकते। प्रकाश के बिना विमर्श नहीं और विमर्श के बिना प्रकाश का कोई अस्तित्व नहीं। अतः कहा जा सकता है कि एक के बिना दूसरे के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता हैं। दोनों में 'अभेदवादी' संबंध देखा जा सकता हैं। प्रकाश को आत्मा का स्वरूप माना गया है और विमर्श को प्रकाशरूप परमात्मा के स्वरूप की प्रतीति माना गया है। यह विमर्श ही उस शिव, परमेश्वर की अपनी महानता की पूर्ण प्रतीति हैं। विमर्श को शिव की शक्ति रूपा कहा गया हैं। यह विमर्श परमशिव का पूर्ण 'अहम्' कहा जाता है।[2] प्रकाश को शिवरूप में और शक्ति को विमर्श रूप में बताया गया है। शिव प्रकाश का पर्यायवाची रूप या प्रकाश के रूप में शिव एक ही बात हैं। शिव अपने तेज–प्रकाश से इस सृष्टि की रचना करता हैं, व्यक्ति के अज्ञान रूपी आवरण को हटाकर ज्ञान

का प्रकाश भरता है। जिससे उसे अपने वास्तविक स्वरूप का भान होता है। शिव प्रकाश पुंज है अब प्रश्न है कि शिव को यह सब कार्य करने के लिए कौन उकसाता है? कौन है जो शिव को कार्य करने के लिए और सृष्टि का विकास करने के लिए प्रेरित करता है? इसका उत्तर है उसकी शक्ति जिसे विमर्शरूप बताया गया है। यह विमर्श शक्ति उसकी इच्छा शक्ति है जो उसे यह सभी कार्य करने के लिए अभिभूत हैं। यहीं उसकी स्वातंत्र्य शक्ति भी कहलाती हैं। विमर्श शक्ति में ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति सदैव, अभिन्न या अभेद रूप में स्फुरित होती रहती हैं। ज्ञान–इच्छा–कर्म की एक क्रमबद्धता है जिसे संक्षिप्त में ऐसे समझाया जा सकता है कि शिव चेतना रूप है और शक्ति उसकी इच्छा शक्ति हैं। शिव तब तक सर्जन नहीं कर सकता जब तक कि शक्ति उसे सृजन के लिए प्रेरित न करे। अर्थात् हम चेतनापुंज है, हमारे भीतर कहीं न कहीं चेतना विद्यमान रहती हैं। हमें अधिकतर सभी धर्म और दर्शन में कहा जाता है कि मुक्ति से आशय है सभी इच्छाओं से मुक्त हो जाना। कार्य दो प्रकार से किया जाता है – स्वार्थवश किया गया कार्य और बिना स्वार्थ के किया गया कार्य जिसमें दूसरों से कोई अपेक्षा नहीं होती। एक कर्म अज्ञानवश और एक कर्म ज्ञान होने के पश्चात्। प्रश्न उपस्थित होता है कि जितने भी ज्ञानी व्यक्ति है क्या वे अपने कर्मो से विमुख हो गये थे, तो नहीं, कर्म वे कर रहे थे। इसका अर्थ है कि अगर वे इच्छाओं से मुक्त थे तो माना जा सकता है कि वे पूर्णतः मुक्त थे। लेकिन शैव दर्शन के अनुसार उनके मन में इच्छा शक्ति है जो उनकी चेतना को कर्म करने के लिए प्रेरित कर रही है। ये कर्म मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण है जिससे उसके व्यक्तित्व के आंकलन के साथ इस बात का भी आंकलन होगा कि वह मुक्त है या नहीं। कुछ व्यक्ति ऐसे भी तो हो सकते है जो अपने आपको मुक्त कहे, किन्तु वास्तव में वे है नहीं और कुछ वास्तव में मुक्त भी हो सकते हैं, इसका आंकलन कर्म के आधार पर ही होगा। उदाहरणार्थ इच्छा सामान्य मनुष्य में भी है और इच्छा कृष्ण में भी थी, लेकिन उनकी इच्छा शक्ति ने उनसे कौनसे कर्म करवाये – ये कर्मों का भेद ही निश्चित करेगा कि हम किस स्तर पर खड़े है। तो मुक्त पुरूष के कर्मों की गुणवत्ता ही उनके मुक्त स्तर का बोध करवाती है। भारतीय दर्शन में जो यह अवधारणा बनी हुई है कि मुक्त होने का अर्थ सभी इच्छाओं, राग, प्रेम इत्यादि का त्याग करना है क्योंकि ये बंधन उत्पन्न करते हैं। तो व्यक्ति जो इस अर्थ में प्रेम को समझ रहा है तो उससे उसकी इच्छा शक्ति के स्तर का बोध होता है। प्रेम मुक्त पुरूष भी करेगा और साधारण मनुष्य भी करेगा। लेकिन दोनों के प्रेम भाव में अंतर होगा। हो सकता है साधारण मनुष्य का प्रेम उसे बंधनग्रस्त कर दे और मुक्त पुरूष का प्रेम उसे और भी मुक्त कर दे। दोनों की इच्छा शक्ति में यहीं अंतर है। यहां इच्छा शक्ति हमेशा चेतना को कर्म करने के लिए प्रेरित करती है।

इस प्रकार बिना ज्ञान के इच्छा उत्पन्न नहीं होती है और बिना इच्छा के कर्म में परिणति नहीं आती। ज्ञान और कर्म के बीच में ये इच्छा उभयनिष्ठ है इसके बिना कर्म और ज्ञान दोनों अधूरे हैं। इसलिए ज्ञान और क्रिया की पूर्णता इच्छा पर ही निर्भर हैं। इस प्रकार शिव अपनी इच्छा शक्ति के बिना कुछ नहीं है। कश्मीर शैव दर्शन में शिव और शक्ति का यह अनोखा स्वरूप देखने को मिलता हैं। शिव और शक्ति का नित्य सामररस्य होने पर परमात्मा व पूर्ण तत्व की प्रतीति होती हैं। शिव–शक्ति के मध्य अभेदवाद का संबंध दिखाई देता है। शिव के बिना शक्ति की सत्ता नहीं है और शक्ति के बिना शिव 'शव' के समान हैं। ये शक्ति ही शिव में चेतना को जागृत करती है, उसे सृष्टि और प्रलय करने का मार्ग दिखाती हैं, शिव में इच्छा को जागृत करती है जिससे कि शिव इस सृष्टि का विकास करता हैं। शक्ति के बिना शिव जड़ रूप ही हो जायेगा, क्योंकि प्रकाशरूप होते हुये भी शिव को बिना शक्ति के अपनी सत्ता (विमर्श) की प्रतीति नहीं होती शिव–शक्ति के इस अभेदवाद को आचार्य सोमानंद ने अपनी 'शिवदृष्टि' में समझाया हैं। आचार्य सोमानंद की 'शिवदृष्टि' ही कश्मीर शैवदर्शन का सर्वप्रथम दार्शनिक ग्रंथ माना गया हैं। सोमानंद ने शिवदृष्टि में शैव दर्शन के मूल सिद्धांतों का, तत्वों का सृष्टि का तथा शैव दर्शन के उस विचित्र अद्वैत सिद्धांत का सुंदर तथा स्पष्ट वर्णन किया है जिसे आचार्य अभिनवगुप्त ने पराद्वैत या परमाद्वैत नाम दिया है।[3] शिवदृष्टि में भी शिव–शक्ति के स्वरूप का वर्णन देखने को मिलता है जिसे यहां संक्षेप में बताना उचित होगा – शक्तिस्वभाव से युक्त होने पर ही शिव कर्ता, कर्म का अधिकारी होता है। शक्ति चेतनारूपी परमतत्व का विमर्श है और इस विमर्श से ही वह कर्म को करने अथवा न करने का

अधिकारी होता है। अपनी विमर्श शक्ति से शिव को सब कुछ करने की स्वतंत्रता हैं। परमशिव की इच्छा शक्ति (विमर्श) ही उसका स्वातंत्र्य कहलाता हैं। परमशिव की यह जो इच्छा है किसी अपूर्ण की दूसरे पर आधारित इच्छा न होकर अपने स्वयं के पूर्ण होने की स्वतंत्र इच्छा हैं। अपूर्ण में दूसरों से अपेक्षा रहती हैं। किन्तु परमशिव (आत्मा) अपने में पूर्ण हैं। यही शिव–दृष्टि का सार हैं। जिस प्रकार भारतीय दर्शन में सर्वोच्च स्थान अद्वैत वेदांत को प्राप्त हैं, उसी प्रकार शैव परम्परा में अद्वैतवादी दर्शन के रूप में कश्मीर शैव दर्शन को सर्वोच्च स्थान प्राप्त हैं। कश्मीर शैव दर्शन को त्रिक दर्शन के नाम से जाना जाता हैं, इसमें पति, पशु और पाश इन तीन तत्वों को स्वीकार किया गया हैं। कश्मीर के अद्वैतवादी शैवदर्शन की दार्शनिक धारा का मूल स्रोत शिवसूत्र हैं। शिवसूत्र शिवत्व प्राप्ति की साधनयात्रा है। चैतन्यात्मक, आत्मस्वरूप के साक्षात्कार का उत्तम मार्ग इसमें वर्णित हैं। शिवसूत्रों के मूल उद्भावक या प्रणेता स्वयं शिव थे, किन्तु इसके उद्धारक आचार्य वसुगुप्त हैं। कश्मीर शैव र्दान को स्पंद दर्शन भी कहा जाता हैं। स्पन्द त्रिक्दर्शन की दार्शनिक दृष्टि का अभिधान है। कश्मीर का त्रिकदर्शन अद्वैतवादी हैं। इनके अनुसार परमशिव जो 'अनुत्तर', 'संविद' आदि अनेक नामों से प्रख्यात है, अपनी स्वातंत्र्यशक्ति से जो उनकी इच्छाशक्ति स्पन्दशक्ति का ही अन्य नाम हैं। कश्मीर शैव दर्शन को प्रत्यभिज्ञा दर्शन भी कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है – भूतपूर्व की पहचान करना अर्थात् किसी को देखकर यह अनुमान लगाना कि इसे पहले भी कहीं देखा हैं। कश्मीर शैव दर्शन में परमशिव के दो रूपों को बताया गया हैं – विश्वातीत और विश्वमय। अद्वैतरूप शिव के स्वरूप को पहचानने के उद्देश्य से क्षेमराज ने प्रत्यभिज्ञारूपी महासमुद्र से उस शिव के स्वरूप को प्रदर्शित करते हुये प्रत्यभिज्ञा हृदयम में कहते है कि वह शिवतत्व जो चित् रूप है, वह स्वात्मरूपी देवता ही सबका कारण है, उसी से परमार्थ की प्राप्ति हो सकती है तथा वही जीवन का उत्कृष्ट फल हैं। इस प्रकार कश्मीर शैव दर्शन में शिव–शक्ति के स्वरूप को एक–दूसरे से अभिन्न, बताया गया हैं। शक्ति कोई अलग तत्व नहीं बल्कि उस शिव की ही विमर्श शक्ति हैं जिससे इस संपूर्ण चेतन–अचेतन जगत की उत्पत्ति होती है।

वीरशैव दर्शन

शैव परम्परा में वीर शैव दर्शन अपना अलग महत्व रखता हैं। वीर शैव दर्शन को 'लिंगायत संप्रदाय' भी कहा जाता है। क्योंकि ये लिंग को गले में धारण किये हुये रहते हैं। वीर शैव दर्शन के प्रवर्तक कर्नाटक के राजा विज्जल के प्रधानमंत्री वसवेश्वर को माना जाता हैं। इस संप्रदाय में 'लिंग' को परमतत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। यहां लिंग से अभिप्राय परम चेतना है। गले में धारण किया हुआ प्रतीक पुरूष अथवा आत्मा अर्थात् चेतना का ही प्रतीक रूप हैं। कश्मीर शैव दर्शन के समान वीर शैव दर्शन का मूल आगम शास्त्र को माना जाता हैं। वीर शैव दर्शन में 'वी' शब्द से अर्थ 'ज्ञान' और 'र' धातु से तात्पर्य 'रमण' से हैं। अतः शिव और जीव के मध्य अभेद का बोध कराने वाली विद्या, जिसमें शिवभक्त रमण करते हैं, यहीं वीर शैववाद का आशय है। वीर शैव दर्शन को 'शक्ति विशिष्टाद्वैत' भी कहते हैं। शक्ति विशिष्टाद्वैत सिद्धांत में शिव और जीव के मध्य न तो भेद और न अभेद का संबंध पाया जाता है। अपितु भेदाभेद संबंध वीर शैव दर्शन में इस सिद्धांत को निम्नलिखित श्लोक से समझाया गया है –

'शक्तिश्च शाक्तिश्च शक्ति ताभ्यां विशिष्टौ,

शक्तिविशिष्टौ शिवजीवो, तयोरद्वैतं शक्तिविशिष्टाद्वैतम्।'

अर्थात् सब कुछ जानने वाला, सब कुछ करने वाला चित्, अचित् से युक्त शक्ति विशिष्ट शिव और कुछ न जानने वाला या अल्पज्ञ शक्ति विशिष्ट जीव इन दोनों के अभेद को बताने वाला सिद्धांत ही शक्ति विशिष्ट अद्वैत सिद्धांत कहलाता है। इस सिद्धांत में शिव और जीव इन दोनों में न भेद, न अभेद के अलावा भेदाभेद को स्वीकार किया जाता हैं। बंधन की अवस्था में शिव और जीव के मध्य भेद होता है और मुक्तावस्था में शिव और जीव के मध्य अभेद होता हैं। इसी प्रकार वीर शैव दर्शन में शिव और शक्ति के विषय में कहा गया है कि शिव जब शक्ति से युक्त होता है तो वह सगुण और यदि शक्ति से संकुचित होता है तो वह निर्गुण कहलाता हैं। जगत् की सृष्टि जो कि शिव, शक्ति से प्रेरित होकर करता है उसमें शिव सगुण होता है और

प्रलयकाल के समय शक्ति का संकुचन हो जाने से शिव निर्गुण कहलाता हैं। इस प्रकार शिव की शक्ति उससे अविनाभाव संबंध से जुड़ी रहती हैं। इस शक्ति को सच्चिदानंद स्वरूप कहा जा सकता है।

वीर शैव दर्शन में शिव और शक्ति के संबंध में तीन सिद्धांत प्रसिद्ध हैं, जो कि इस प्रकार है – शिवाद्वैत, शक्तिविशिष्टाद्वैत, विशेषाद्वैत।

'शिवाद्वैत' की उत्पत्ति निम्नलिखित श्लोक 'शिवश्च शिवश्च शिवो तयोः अद्वैतं शिवाद्वैतम्' के रूप में मानी जाती है। प्रथम शिव पद सूक्ष्म चिताचित् विशिष्ट चैतन्य विशेष अर्थात् लिंग है और स्थूल विशिष्ट चैतन्य विशेष जीव है जिसे वीर शैव दर्शन में अंग माना गया है। कहने का तात्पर्य पहला शिव परमात्मा को और दूसरा जीवात्मा को दर्शाता हैं। यहां सूक्ष्म से तात्पर्य आणव मायीय या कार्मिक मल नहीं है बल्कि यह शक्तिविशिष्ट तत्व है तथा स्थूल विशिष्ट जीव है। जिसमें स्थूल से तात्पर्य मायादि से आवृत्त हैं, समल हैं। इन दोनों के ऐक्य का प्रतिपादन करने वाला यह शिवाद्वैत सिद्धांत हैं।

'शक्तिविशिष्टाद्वैत' इसकी व्युत्पत्ति 'शक्तिश्च् शक्तिश्च शक्ती ताभ्यां विशिष्टा जीवेषी तयोः अद्वैतं' से होती है। यहां पर शिव और जीव दोनों को शक्ति विशिष्ट बताया गया है। शिव की इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियां परिहार्य है जबकि जीव का इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियां संकुचित और अल्पावस्था में है। उनका विकास करना ही शिव तत्व को प्राप्त करने के समान हैं।

'विशेषाद्वैत' की व्युत्पत्ति ''विश्व शेषश्च विशेषौ तयोः अद्वैतं–विशेषाद्वैतम्' रूप में मानी जाती हैं। यहां दो पद वि+शेष प्रधान है जिसमें 'वि' से तात्पर्य 'शिव' से है तथा 'शेष' से तात्पर्य शिव के 'अंश' से है। इन दोनों का ऐक्य ही विशेषाद्वैत कहलाता है। इसमें परमात्मा तथा जीव के मध्य अंश–अंशी का भाव बताया गया हैं।

शक्ति और शिव के संबंध को लेकर कई मतभेद प्रचलित है। कुछ आचार्य शिव और शक्ति के संबंध को 'समवाय' तो कुछ 'तादात्म्य' तथा अन्य अद्वैतवाद रूप को मानते हैं, किंतु वीरशैव दर्शन में शिव और शक्ति के मध्य 'अविनाभाव संबंध' स्वीकार किया गया हैं। अविनाभाव एक नित्य संबंध है जिसका न तो कोई जोड संभव और न कोई तोड संभव हैं। उदाहरण के लिए गुड़ की मिठास, अग्नि की दाहकता, चांद की चांदनी इत्यादि। शिव की शक्ति संकुचित अवस्था में जीवात्मा में भक्ति रूप में प्रविष्ट होकर उस जीव की आत्मा को परमशिव के साथ समरसतापूर्ण कर देती है। अतः भक्ति से पूर्ण जीव या भक्त 'शिव' बन जाता है। जीव के भीतर यह शक्ति ही भक्ति रूप में प्रवेश करके जीव को उसके अभाव का बोध कराती हुई शिव स्वरूप की प्राप्ति में सहायक बनती हैं। वीरशैव दर्शन में परमतत्व के दो रूपों को बताया गया है। पहला रूप लिंग स्थल, दूसरा रूप अंग स्थल हैं। लिंग स्थल उपास्य रूप है। पूजा करने योग्य रूप हैं। वहीं परम तत्व हैं। दूसरा अंग स्थल है जिनको पूजा करने वाले उपासक कहा जाता हैं। इसमें बताया गया है कि जब लिंग स्थल अपने आपको प्रकट करता है तो वह कलाओं के रूप में अपने आप को प्रकट करता हैं। भगवान शिव की सबसे बड़ी शक्ति कला को माना गया हैं। इसे महाशक्ति कहा गया है जिसके रूप में शिव स्वयं को प्रकट करते हैं और जो अंग स्थल है, वह अपने आपको भक्ति रूप में प्रकट करता हैं। जो जितनी भक्ति करेगा उसकी उपासना उतनी ही सफल होगी। अंग स्थल सच्चा उपासक है। सच्चा उपासक वही जो इन विधाओं का पालन करता हो, जैसे दो पहर लिंग की पूजा करना, लिंग को गले या बाहों में धारण करते हुए लिंग की पूजा करना, पूजा के पश्चात् ही भोजन ग्रहण करना, इस प्रकार अंग स्थल में इस तरह की चौसठ कलाओं का वर्णन किया गया हैं। इस प्रकार लिंग स्थल से आशय परमशिव तथा अंग स्थल से आशय जीव हैं। जब लिंग स्थल और अंग स्थल दोनों का मिलन हो जाता है उसे ही मुक्ति कहा जाता है।

वीरशैव दर्शन में लिंग की अर्चना को श्रेष्ठतम माना जाता हैं। अत्यक्त का जो व्यक्त चिन्ह है उसे लिंग कहा जाता है। जैसे – पर्वत पर धुंआ है इसलिए पर्वत पर आग है। इसे लिंग के आधार पर ही सिद्ध किया जा सकता हैं। क्योंकि धुआं अग्नि का लिंग है। यहां लिंग से तात्पर्य चिन्ह या संकेत से हैं। न्याय दर्शन पूरी तरह इस लिंग की व्याख्या करता रहा हैं। आगम शास्त्रों में भी लिंग को चिन्ह रूप स्वीकार किया गया हैं। लिंग को

मध्य पद रूप में भी स्वीकार किया जाता हैं। जैसे – जो दिखाई दे रहा है और जो नहीं दिखाई दे रहा है उसके मध्य में देखने वाला एक व्यक्ति खड़ा है और दूसरी तरफ जो वस्तु दिखाई नहीं दे रही उसके बारे में जानना चाहता है, तो वह अनुमान करेगा और अनुमान का आधार लिंग होता है। शैव दर्शन में लिंग का अर्थ बिंदू या संकेत रूप में लिया जाता हैं। वीर शैव दर्शन में लिंग को शिव के रूप में पूजा की जाती हैं। वीर शैव दर्शन में 'जंगम' को पुरोहित जाति के समान माना जाता हैं। 'जंगम' के लिए कठिन कर्मकांड होते हैं। जैसे जैन दर्शन में दिगम्बर शाखा के कठिन नियम होते है वैसे ही वीर शैव दर्शन में जंगम बनने के लिए कठोर तप, नियम साधना होती है।

वीर शैव दर्शन भी कश्मीर शैव दर्शन के समान आगम आधारित है। ये वेदों को स्वीकार नहीं करते हैं। ये तंत्र आगमों को भी प्रमाण मानते हैं। वीर शैव दर्शन में कहा जाता है कि एक ऐसा तत्व जिसकी आराधना करने के पश्चात् किसी अन्य की आराधना करने की आवश्यकता नहीं होती है, वह केवल शिव हैं। शिव को कई नामों से अभिहित किया जाता है – परमात्मा, परमेश्वर, परमशिव, अनुत्तर, जगतकर्ता, सच्चिदानंद, सत्, अजन्मा इत्यादि। शिव का कोई उत्तर नहीं, इसकी किसी से कोई तुलना नहीं इसलिये शिव को अनुत्तर कहा गया है। शिव अजन्मा है, इनका कभी नाश नहीं हो सकता है, इसलिए शिव को स्वयंभू भी कहा जाता हैं। शिव में शुद्ध चेतना विद्यमान हैं किन्तु उनकी ये शुद्ध चेतना अद्वैत वेदांत के समान निष्क्रिय न होकर क्रियाशील है। शिव की स्पंदन शिव जब शक्ति में स्फुरित होती है, स्पन्दित करती है ये दो रूप में विभाजित हो जाते है यही संसर्ग कहलाता है। ये दो रूप शिव और शक्ति में विभाजित हो जाती है। शिव और शक्ति एक दूसरे से पृथक नहीं हो सकते हैं। इसके लिए शिव का रूप अर्द्धनारीश्वर है। आधे अंग में शिव और आधे अंग में शक्ति विद्यमान है। इसलिए इन दोनों को कभी पृथक समझा ही नहीं जा सकता हैं। संसार की उत्पत्ति करने के लिए शिव स्वयं को प्रकाश रूप में तथा शक्ति विमर्श रूप में प्रकट करती हैं। प्रकाश संपूर्ण जगत को दर्पण चेतना से संचार करता है। प्रकाश की तुलना इन्होंने दर्पण से की है कि दर्पण के सामने जो भी वस्तु आती है उसे वह प्रकाशित कर देता है, प्रतिबिम्बित कर देता है। तो भगवान शिव का भी यहीं रूप है। इस संसार की शक्तियां जो कि सुषप्ति अवस्था में है उनको यह जागृत कर देता हैं। शिव की शक्ति क्रिया शक्ति रूप में है इसलिए शिव कभी निष्क्रिय हो ही नहीं सकता। शिव शक्ति के साथ नित्य संबंध से जुड़ा होता है। जिसे कभी समाप्त माना ही नहीं जा सकता हैं। शिव–शक्ति का संबंध न तो भेद है, न अभेद है और न ही भेदाभेद है, वह तो इन सभी संबंधों से परे है, जिसे हम 'अविनाभाव संबंध' कह देते हैं। यह शिव की शक्ति ही स्फुरित होकर जीवों में शिव के स्वरूप को प्रकट करती हैं। जो भक्त है वे इस शक्ति के कारण भक्ति के रूप में शिव के स्वरूप को देखते हैं। अर्थात् जब जीवात्मा शिव (मूल तत्व) के प्रति जप, तप तथा साधना के द्वारा अनुरक्त हो जाता है तब वह भक्त बन जाता हैं। वीर शैव के अनुसार यह जगत परमशिव से ही सम्पन्न हुआ है और परमशिव की शक्ति ही भक्ति के रूप में जीवामा में अनुरक्त होकर जीव के अभाव का विच्छेद करके शिव के वास्तविक स्वरूप से साक्षात्कार करवाती हैं। शिव के वास्तविक रूप का साक्षात्कार होने से ये शक्ति, भक्ति के रूप में आनंद और समरसता को संचारित करती हैं। भक्ति के रूप में अपने आपको शक्ति षट्शक्ति के रूप में विभाजित कर देती है – चित् शक्ति, आनंद शक्ति, आदि शक्ति, इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति।

वीर शैव दर्शन में भक्ति स्वरूप की छः शक्तियों का वर्णन किया गया है –

- **चित् शक्ति** – शिव प्रकश रूप हैं और जो शिव का यह प्रकाश रूप है, यहीं उनकी चित् शक्ति हैं। ये चित् शक्ति अपनी स्वेच्छा से जगत् की सृष्टि और संहार करती हैं। जब इस शक्ति का विकास होता है तो सृष्टि का उन्मीलन होता है। सृष्टि प्रकट होने लगती है, दिखाई देने लगती है। जब ये इस विकास को संकुचित कर देती है तो जगत का निर्मीलन हो जाता है। इस प्रकार ये चित् शक्ति संपूर्ण जगत की उत्पादक और विनाशक दोनों शक्ति हैं। ये चित् शक्ति, शिव की प्रथम शक्ति है जिसकी उपमा सूर्य से दी गई हैं। चित् शक्ति ऐसा प्रकाश है जो कभी समाप्त नहीं हो सकती, ये सर्वदा ऐसी ही बनी रहती हैं।

- **आनन्द शक्ति** – शिव स्वयं आनन्द स्वरूप है। इस शक्ति के अंतर्गत यदि कोई अभिलाषित पदार्थ है तो उस अभिलाषित पदार्थ की उपलब्धि के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। शिव को औघड़ दानी कहा गया है जो मांगने पर नहीं अपितु स्वयं दान करते रहते हैं। यहीं सबसे बड़ी आनन्द शक्ति है जहां बिना मांगे शिव सबकुछ दान देते हैं। आनंद शक्ति शिव स्फुरण शक्ति है। यह स्फुरण शक्ति सम्पूर्ण जगत का संचालन आनन्द रूप में करती है।
- **आदि शक्ति** – पराशक्ति जिसे आनंद शक्ति कहा जाता है, उसके ही प्रादुर्भाव से आदि शक्ति की उत्पत्ति होती है। आदि शक्ति परम शिव परमेश्वर की सर्वोच्च शक्ति हैं। इसके द्वारा ही जगत में आनंद शक्ति स्फुरित होती है। इस आदि शक्ति के द्वारा ही इच्छा शक्ति का उदय होता है। इस इच्छा शक्ति से ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति की उत्पत्ति होने से उसे आदि शक्ति कहते हैं। इस आदि शक्ति के द्वारा ही जीवात्मा पर परमशिव की दृष्टि गोचर होती हैं। ये आदि शक्ति शिव से भी अधिक शक्तिशाली है, जिसके कारण सभी का अस्तित्व हैं। इस संपूर्ण सृष्टि का कारण ये आदि शक्ति हैं। इसलिए परमशिव की यह सर्वश्रेष्ठ शक्ति है।
- **इच्छा शक्ति** – चमत्कार से इच्छा शक्ति को युक्त कहा गया हैं। शिव सर्वतंत्रों से स्वतंत्र हैं। शिव की इस इच्छा स्वतंत्र शक्ति से संसार में अलौकिक घटनाएं घटित होती है, जिनसे हमारा कोई संबंध नहीं होता है। इसलिए इच्छा शक्ति को शिव का चमत्कार कहा गया हैं। शिव की इच्छा शक्ति जगत में किसी भी प्रकार की घटना घटित कर सकती है जो संशय उत्पन्न करती हैं। जो हमारे मानसिक स्तर से उच्चतम श्रेणी की होती हैं। इच्छा के साथ संकल्प विद्यमान होता हैं। जब शिव इस जगत का निर्माण करते हैं तो उसके बाद परमशिव संकल्प करते हैं। अतः इच्छा शक्ति के साथ संकल्प शक्ति भी विद्यमान होती है। इच्छा शक्ति के साथ संकल्प शक्ति भी विद्यमान होती है। इच्छा शक्ति शिव की श्रेष्ठतम शक्ति है जो संपूर्ण जगत का संचालन और घटनाओं का संचालन शिव के द्वारा अपनी इच्छा से करती हैं। अतएव शिव के मन में इच्छा शक्ति से संकल्प करती हैं। अतएव शिव के मन में इच्छा शक्ति से संकल्प उत्पन्न होता है और वह इस सृष्टि का निर्माण करते हैं।
- **ज्ञान शक्ति** – इस संसार में जितने भी जानने योग्य पदार्थ है उन सभी का बोध ज्ञान शक्ति कराती हैं। किसी भी तत्व या वस्तु के वास्तविक ज्ञान के बोध में शिव की ज्ञान शक्ति ही सहायक होती हैं। यह ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति पर निर्भर करती हैं। किसी वस्तु की इच्छा होगी, तभी हम उस वस्तु के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे। इस प्रकार इस ज्ञान शक्ति के द्वारा संसार की प्रत्येक वस्तु को बोधित किया जा सकता हैं। जब ज्ञान शक्ति का बोध पूर्ण हो जाता है तो शिव ज्ञान स्वरूप महादेव हो जाते हैं और यह ज्ञान शक्ति महाशक्ति रूप में परिणत हो जाती हैं। अतएव इच्छा शक्ति होने पर ही ज्ञान शक्ति प्राप्त की जा सकती हैं, यदि हममें किसी को जानने समझने की इच्छा ही नहीं होगी तो हम क्यों ही ज्ञान प्राप्त करना चाहेगे। इसलिए इच्छा शक्ति प्रेरक है और ज्ञान शक्ति उससे प्रेरित होकर सारा ज्ञान खोल देती हैं।
- **क्रिया शक्ति** – क्रिया शक्ति निर्माणात्मक हैं। भगवान शिव में निर्माण की अथाह शक्ति हैं। परमशिव अपनी सभी शक्तियों से जगत का उन्मीलन और निर्मीलन करते हैं। शिव की क्रिया से ही संपूर्ण जगत का निर्माण होता हैं। क्रिया शक्ति जगत के निर्माण को व्यवस्थित करती हैं। जगत में विद्यमान अपूर्णता को पूर्णता में परिवर्तित करने का कार्य, क्रिया शक्ति ही करती हैं। क्रिया शक्ति एक परिणामी शक्ति हैं। अतएव संसार में परिवर्तन इस क्रिया शक्ति से उत्पन्न होता हैं। शिव की छः शक्ति इस संसार में परिवर्तन, परिणाम और चमत्कार तथा आनंद के लिए उत्तरदायी होती हैं। इसलिए कह सकते हैं कि शिव ही शक्ति के पति है, शक्ति के धारक हैं। इन छः शक्तियों में एक शक्ति महाशक्ति बन जाती हैं। इस महाशक्ति को धारण करने वाले सर्वज्ञ, आनंदित, शिव ही हैं। जब शिव–शक्ति का क्रिया रूप उत्पन्न होता है, तो उसे कहते हैं कि संसार परमशिव के लिए क्रीडा स्थल समान है।

निष्कर्ष

कश्मीर शैव दर्शन में जीवन और जगत की वास्तविकता का चित्रण किया गया हैं। इसके सिद्धांतों, साधना आध्यात्मिक पद्धति के अध्ययन से मानव के जीवन को सुषुप्ति अवस्था से जाग्रत अवस्था में परिणत किया गया हैं। यह जगत परमशिव की इच्छा का परिणाम हैं। उसकी इच्छा शक्ति ही उसे जगत् की सृष्टि करने के लिए प्रेरित करती हैं। शिव की इच्छा को विमर्श शक्ति कहा गया हैं। यह विमर्श शक्ति शिव के साथ अभेद संबंध से यक्त होती हैं। साथ ही शिव परमतत्व होते हुये आत्म तत्व रूप से भी अभिहित होता हैं। कश्मीर शैव दर्शन आध्यात्मिक सम्प्रदाय होने के साथ ही सौन्दर्यमूलक दर्शन भी है। यह दर्शन अभेदवादी होते हुये, प्रत्येक प्राणी के प्रति अद्वैत का भाव रखने की प्रेरणा देता है। इस जगत में उसकी इच्छा शक्ति (विमर्श शक्ति) ही उसे परिवर्तन के लिए उकसाती है। बिना शक्ति के शिव कुछ भी नहीं और इसके साथ ही वीरशैव दर्शन में इस संपूर्ण जगत को शिव और शक्ति से युक्त प्रपंचात्मक जगत के रूप में व्याख्यायित किया गया हैं। यह संपूर्ण जगत में शिव और शक्ति के अतिरिक्त अन्यत्र किसी की भी सत्ता नहीं हैं। वीर शैव दर्शन में इस जगत की रचना से पूर्व यह विश्व परशिव में स्थित होता है और प्रलयकाल होने पर उसी में मिल जाता है। अतएव इसे वीरशैव दर्शन में 'स्थल या लिंग' कहा गया हैं। वीरशैव दर्शन में शिव को सकल और निष्कल बताया गया हैं। शिव–शक्ति के युक्त होने से सकल और शक्ति के संकुचित होने पर निष्कल कहलाता हैं। अतः शिव की जो बाह्य शक्ति होती है, वह उसमें अविनाभाव संबंध से युक्त होती हैं। शैव सम्प्रदाय के कश्मीर शैव दर्शन में शिव–शक्ति के स्वरूप को अद्वैतवादी बताया गया है, जिसका प्रयोजन मनुष्य की मुक्ति है जो कि उसे अपने ब्रह्म रूप या शिव रूप का बोध होने पर होती है। कश्मीर शैव दर्शन में शिव और शक्ति को अभिन्न माना गया है जहां पर शिव शक्ति के बिना शव के समान हैं। ये शक्ति ही उसे जगत सृष्टि के लिए प्रेरित करती है, सगुण–निर्गुण का भेद समझाती हैं। वहीं वीरशैव दर्शन में शिव और शक्ति के मध्य शक्कर के मिठास की भांति, फूल में गंध के स्वभाव की भांति, ऐसा नित्य संबंध को बताया गया है जिसे कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। ऐसे नित्य संबंध को शिव–शक्ति का अविनाभाव संबंध कहा गया हैं। जैसे जीवात्मा की उत्पत्ति के लिए कारणभूत शिव की शक्ति ही भक्ति के रूप में जीवात्मा में प्रविष्ट होकर उसकी संकुचित शक्ति का विकास कर अपने मूल स्वरूप शिव का ज्ञान कराती हैं तथा उसके साथ समरस बना देती हैं।

इसके अतिरिक्त सांख्य दर्शन भी, कश्मीर शैव दर्शन से साम्यता रखता हैं। इन दोनों का शक्ति और प्रकृति का विचार आपस में साम्यता रखता हैं। शैव सिद्धांत में जिस प्रकार शिव की शक्ति को विमर्श रूप माना जाता है। उसी प्रकार सांख्य दर्शन में प्रकृति को पुरूष की विमर्श शक्ति माना गया हैं। कश्मीर शैव दर्शन में शक्ति को शिव की सृजनात्मक शक्ति माना जाता है, उसी प्रकार सांख्य दर्शन में भी प्रकृति को पुरूष का सृजन करते हुये बताया गया हैं। सांख्य की प्रकृति शैव दर्शन के शिव की भांति अव्यक्त है, उसे व्यक्त होने के लिए पुरूष की आवश्यकता होती हैं। प्रकृति अव्यक्त होने से, उसमें संपूर्ण जगत भी अव्यक्त रूप में निहित रहता है। प्रकृति, शिव के समान अनुत्पन्न है, प्रकृति का भी कोई कारण नहीं है। प्रकृति शिव की भांति नित्य तथा शाश्वत है। प्रकृति एक स्वतंत्र तत्व है जो किसी अन्य तत्व पर अपनी स्वतंत्रता के लिए आश्रित नही रहती है। जगत में व्याप्त सुख, दुःख, अराजकता, विषम स्थितियां, परिमित विषय, सूक्ष्म तथा स्थूल विषय ये सभी अज्ञान या भ्रम को उत्पन्न करते हैं। अतः इन सभी प्रकार के अज्ञान और भ्रम का बोध कराने वाला तत्व कोई और नहीं अपितु शिव के समान प्रकृति ही हैं। इस प्रकार दोनों दर्शनों में समानता होते हुये भी भिन्नता हैं। सांख्य दर्शन द्वैतवादी सिद्धांत है, जिसमें प्रकृति और पुरूष का द्वैत बना ही रहता है, किंतु शैव दर्शन में शिव और शक्ति में द्वैत का निराकरण प्रत्यभिज्ञा दर्शन में कर दिया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, डॉ. भंवरलाल, काश्मीर शैवदर्शन और कामायनी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1968, पृ. 41
2. जोशी, डॉ. भंवरलाल, काश्मीर शैवदर्शन और कामायनी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1968, पृ. 42
3. प्रदीप, कश्मीर शैवदर्शन का परिशीलन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 5

4. शास्त्री, बी.एन. पण्डित, श्री काश्मीर शैव दर्शन, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, 2005, पृ. 10
5. कश्यम, स्वामी अमोघ, स्पन्दकारिका, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 2018, पृ. 122
6. द्विवेदी, डॉ. विश्वम्भर, अद्वैत वेदांत एवं कश्मीर शैव अद्वैतवाद, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 106
7. पाण्डेय, डॉ. ब्रजेश कुमार, श्रीकरभाष्य : सिद्धांत और प्रतिपक्ष, शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 1
8. घोष, डॉ. रमा, वीरशैव संस्कृति एवं दर्शन, शैव भारती शोध प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 22
9. घोष, डॉ. रमा, वीरशैव संस्कृति एवं दर्शन, शैवभारती शोधप्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 262
10. घोष, डॉ. रमा, वीरशैव संस्कृति एवं दर्शन, शैवभारती शोधप्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 252
11. घोष, डॉ. रमा, वीरशैव संस्कृति एवं दर्शन, शैवभारती शोधप्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 252
12. घोष, डॉ. रमा, वीरशैव संस्कृति एवं दर्शन, शैवभारती शोधप्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पृ. 333.

❖◆❖